कैसा हो हमारा आहार

–आचार्य राजकुमार जैन

हम प्रतिदिन जो कुछ खाते-पीते हैं वह आहार कहलाता है। वह आहार प्राणिमात्र के जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक है, क्योंकि वह आहार हमारे शरीर की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं करता है उस आहार के द्वारा शरीर का भरण-पोषण होता है, अतः वह शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा और स्वास्थ्य संवर्धन का मुख्य आधार है। यह एक स्वतः स्थापित तथ्य है कि कोई भी मनुष्य खाए बिना जी नहीं सकता और जब जी नहीं सकता तो कुछ कर नहीं सकता। अतः कुछ करने के लिए जीना आवश्यक है और जीने के लिए आहार ग्रहण करना आवश्यक है। इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्य को अपने जीवन निर्वाह के लिए आहार की अपेक्षा है।

आहार का हमारे शारीरिक स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। क्योंकि प्रतिदिन हम जो कुछ खाते हैं पीते हैं वह हमारे शरीर में पहुँचकर शरीर के पाचन संस्थान, शरीर में स्थित अवयवों की क्रियाओं तथा रस-रक्त मांस आदि धातुओं को अनुकूल या प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है। इससे स्पष्ट है कि हमारे जीवन निर्वाह के लिए आहार की अपेक्षा है जो हमारे शरीर और शारीरिक स्वास्थ्य के संरक्षण और संवर्धन का मुख्य आधार है।

आहार का प्रभाव केवल शरीर पर ही नहीं पड़ता है, अपितु मन और मस्तिष्क भी उससे अपेक्षित रूप से प्रभावित होते हैं। क्योंकि हमारे द्वारा ग्रहण किए गए आहार से केवल शरीर का ही पोषण नहीं होता है, अपितु मन और उसकी क्रियाओं पर भी उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। अतः शरीर के साथ-साथ मन भी स्वस्थ रहे–यह हमारे लिए महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क की रासायनिक क्रियाएँ भी हमारे शरीर और मन को प्रभावित करती हैं। दूसरी ओर मस्तिष्क की रासायनिक प्रक्रिया हमारे द्वारा गृहीत भोजन में विद्यमान विभिन्न तत्वों से प्रभावित होती है। इस अर्थ में आहार मात्र शरीर का ही पोषण नहीं करता है, उससे मन और मस्तिष्क को भी पोषण तत्व प्राप्त होते हैं। आहार की उपयोगिता बतलाते हुए आयुर्वेद शास्त्र में आहार को शरीर के बल, वर्ण और ओज का मूल प्रतिपादित किया गया है–''प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजतां च।''

आयुर्वेद में आहार की परिभाषा बतलाते हुए कहा गया है–''आहियते अन्ननलिकया यत्तदाहारः।'' अर्थात् अन्न नलिका (मुख मार्ग) से जो कुछ ग्रहण किया जाता है वह आहार है। इस विषय में आधुनिक शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से पर्याप्त विचार किया गया है। तदनुसार आहार उस द्रव्य को कहते हैं जो पाचन नलिका (आंत्र) के द्वारा शरीर में शोषित होकर निम्न कार्यों को सम्पन्न करता है :–

(१) शरीर में होने वाली विभिन्न प्रकार की क्षति की पूर्ति करना और उसके विकास में सहायता प्रदान करना।

(२) ताप या शक्ति उत्पन्न करना।

(३) उपर्युक्त दोनों क्रियाओं का नियन्त्रण करना।

इनमें से प्रथम कार्य मांसतत्व (प्रोटीन), खनिज लवण (साल्ट) एवं जल के द्वारा निष्पन्न होता है। दूसरा अर्थ वसा (फैट) और शाकतत्व (कार्बोहाइड्रेट) के द्वारा पूर्ण होता है और तीसरा कार्य जीवनीय तत्व (विटामिन्स) तथा खनिज लवण सम्पादित करते हैं।

शरीर की क्रियाशीलता के लिए शरीर में स्थित मांस पेशियाँ सदैव चेष्टावान् रहती हैं जिससे शरीर में सदैव शक्ति का क्षय होता रहता है। अतः इस क्षति की पूर्ति के लिए नित्य नूतन आहार द्रव्यों की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त शरीर के विकास काल में भी शरीर के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति एवं शक्ति खाए हुए आहार से ही प्राप्त होती है। अतः शरीर शास्त्र की दृष्टि के उपयुक्त आहार वही है जो शरीर में (१) आवश्यक परिमाण में शक्ति उत्पन्न करें, (२) नित्य प्रति होने वाली क्षति की पूर्ति एवं शरीर के विकास के लिए आवश्यक उपादानों (पोषक तत्वों) की पूर्ति करे तथा (३) शरीर में होने वाली विभिन्न रासायनिक क्रियाओं का नियन्त्रण करे।

हमारे शरीर की विभिन्न क्रियाओं के संचालन के लिए तथा शारीरिक स्वास्थ्य संरक्षण के लिए जो आहार तत्व हमारे लिए आवश्यक हैं तथा आवश्यकतानुसार हमारे भोजन में समावेश होना आवश्यक है। सामान्यतः प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, स्नेह (वसा), लवण, क्षार, लौह और जीवनीय तत्व (विटामिन्स) ये हमारे आहार के सामान्य तत्व हैं। शरीर के पोषण, संवर्धन और संरक्षण के लिए हमारे दैनिक आहार में आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में इनका समावेश होना सन्तुलित भोजन माना जाता है। यदि शरीर को यथा समय इन तत्वों की आपूर्ति होती रहती है तो शरीर स्वस्थ, निरोग और क्रिया करने में सक्षम बना रहता है।

आहार की मात्रा

आहार की मात्रा मनुष्य की अग्नि (पाचकाग्नि) के बल की अपेक्षा रखती है, जैसा कि आयुर्वेद शास्त्र में प्रतिपादित है–''मात्राशी स्यात्। आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी।'' इसका आशय यह है कि आहार की जो मात्रा भोजन करने वाले मनुष्य की प्रकृति में कोई बाधा नहीं पहुँचाते हुए यथा समय पच जाय वही उस व्यक्ति के लिए अभीष्ट एवं प्रामाणित मात्रा है। इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए आगे कहा गया है–''मात्रां खादेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुभुक्षितः।'' तथा ''नाप्राप्तातीतकालं वा हीनाधिकमथापि वा।'' अर्थात् जिसे अच्छी भूख लगी हो ऐसा बुभुक्षित व्यक्ति उचित मात्रा पूर्वक आहार ग्रहण करे तथा समय से पूर्व एवं समय बीत जाने के बाद भोजन नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त बिल्कुल हीन मात्रा या अत्यधिक मात्रा में भी भोजन नहीं करना चाहिए। मात्रा पूर्वक आहार लेने से जो लाभ होते हैं उनका प्रतिपादन आयुर्वेद के आचार्य चरक ने निम्न प्रकार से किया है:-

''मात्रावद् ह्यशनमशितमनुपहत्य प्रकृति बलवर्णसुखायुषा योजयत्युपयोक्तारमवश्यमिति।''

अर्थात् मात्रा पूर्वक ग्रहण किया गया आहार, आहार ग्रहण करने वाले व्यक्ति की प्रकृति को हानि (बाधा) पहुँचाए बिना अवश्य ही उसे बल, वर्ण, सुख एवं पुर्णायु से युक्त करता है।

आहार के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण ज्ञातव्य तथ्य यह भी है कि जब हम इस बात के लिए सचेष्ट और सावधान हैं कि हम क्या खाएँ? तो हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि हम कितना खाएं और कब खाएँ? इसका समाधान करते हुए आचार्य चरक कहते हैं-''हिताशी स्यान्मिताशी स्यात्।'' अर्थात् हितकारी भोजन करने वाला और परिमित याने सीमित भोजन करने वाला होना चाहिए। इसका आशय यह है कि लघु, सुपाच्य एवं सुस्वादु वह भोजन करना चाहिए जो मनुष्य की अपनी प्रकृति के अनुकूल हो। इसके साथ ही परिमित मात्रा याने सीमित प्रमाण में आहार सेवन करना चाहिए। परिमित परिमाण में खाने से शरीर सदा स्वस्थ एवं निरोग तो बना ही रहता है, मन में प्रसन्नता और बुद्धि में निर्मलता रहती है। व्यवहार में सामान्यतः देखा गया है कि कुशाग्र या तीव्र बुद्धि वाले लोग सीमित मात्रा में ही आहार लेते हैं। आत्महित चिन्तन में लगे हुए धार्मिक वृत्ति वाले लोग भी केवल अपने शरीर निर्वाह के लिए अल्प प्रमाण में ही आहार लेते हैं।

हम जो भी कुछ खाते हैं वह हमारी पाचन शक्ति को प्रभावित करता है। उस खाए हुए आहार का परिपाक होने के बाद जब वह आहार रस में परिवर्तित होता है तो वह रस सम्पूर्ण शरीर में घूमता हुआ प्रत्येक अंग, अवयव, मस्तिष्क आदि के सूक्ष्मांशों में पहुँचता है और वे सभी अंगावयव उससे प्रभावित होते हैं। लगातार अधिक खाते रहने से कालान्तर में पाचकाग्नि मन्द हो जाती है जिससे अल्प मात्रा में खाए हुए अन्न का पचाना भी दुष्कर हो जाता है। परिणाम स्वरूप अग्निमांद्य, अरुचि, अतिसार आदि बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। यदि लगातार यही स्थिति बनी रहती है तो शरीर के लिए आवश्यक रस-रक्तादि धातुओं का निर्माण, प्रभावित होता है और शरीर धीरे-धीरे बलहीन एवं निस्तेज होता जाता है। अतः सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि अग्निबल (पाचन शक्ति) की रक्षा की जाए। इसके लिए यह आवश्यक है कि हित और मित अर्थात् हमारे लिए जो हितकारी है और उचित परिमाण या मात्रा में हो उसे ग्रहण किया जाए। कम खाने वाला व्यक्ति कभी भी उदर सम्बन्धी विकारों-परेशानियों से पीड़ित नहीं होता और वह स्वस्थ रहता हुआ पूर्ण सुखायु का उपभोग करता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि हमारे द्वारा खाए गए आहार का प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है। कम खाने वाला व्यक्ति आत्म सन्तोषी होता है। उसकी महत्वाकांक्षाएँ अधिक नहीं बढ़ पाती हैं। उसे जितना मिलता है वह उतने में ही संतुष्ट रहता है। यही कारण है कि उसकी धैर्यशक्ति और सहन शक्ति बराबर बनी रहती है और वह उसे कभी असन्तुलित या अनियन्त्रित नहीं होने देती।

अधिक खाना शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्वास्थ्य के लिए हितकारी नहीं होता है। अधिक खाने से शरीर में भारीपन, बुद्धि में ठसता और मन में तामस भव उत्पन्न होता है जिसका प्रभाव इन्द्रियों पर पड़ता है। परिणामतः मनुष्य में आलस्य और निद्रा उत्पन्न होती है। ये दोनों भाव मनुष्य की सहज एवं स्वाभाविक वृत्ति में बाधक होते हैं। इससे धर्माचरण तथा अन्य आचार-व्यवहार में भी व्यवधान उत्पन्न होता है। आत्महित चिन्तन में लगे हुए व्यक्तियों के लिए सदैव जागरूक बने रहना आवश्यक है, ताकि उनके स्वाध्याय, धर्मानुचिन्तन एवं धर्माचरण में कोई व्यवधान उत्पन्न न हो। यह तब ही सम्भव है जब वह अल्पाहारी हो। भूख से कम खाना एक ओर जहाँ विभिन्न रोगों के आक्रमण से शरीर की रक्षा करता है वहाँ दूसरी ओर मानसिक भावों को दूषित होने से बचाता है और बौद्धिक विचारों में विकृति नहीं आने देता। आहार के सम्बन्ध में एक मूलभूत सामान्य नियम यह है कि ''खाना जीने के लिए है, न कि जीना खाने के लिए।'' आज स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। हम में से अधिकांश लोग खाने के लिए जीते हैं। यही कारण है कि वे जरूरत से अधिक खाते हैं और ऐसा करके वे अपने स्वास्थ्य के प्रति गैर जिम्मेदार रहते हुए अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर लेते हैं।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि शरीर की समस्त क्रियाएँ ऊर्जा के द्वारा उत्पन्न होती हैं। उस ऊर्जा की पूर्ति ग्लूकोज और प्राणवायु (ऑक्सीजन) इन दो स्रोतों से होती है। सामान्यतः जब उचित परिमाण में आहार लिया जाता है तो उसके पाचन के लिए शरीर में विद्यमान (पाचन संस्थान में स्थित) ऊर्जा से काम चल जाता है, किन्तु अधिक मात्रा में आहार ग्रहण किए जाने की स्थिति में अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति शरीरगत अन्य संस्थान या केन्द्र से की जाती है। सामान्यतः आहार पाचन के लिए जो ऊर्जा काम में आती है वह विद्युत ऊर्जा के रूप में जानी जाती है, जबकि मस्तिष्कीय क्रिया-कलापों के काम में आने वाली ऊर्जा प्राण-ऊर्जा होती है। अधिक मात्रा में खाए गए आहार के पाचन के लिए अतिरिक्त विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता होने पर उसकी पूर्ति मस्तिष्कीय विद्युत ऊर्जा से होती है जिससे मस्तिष्कीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रिया-कलाप प्रभावित होते हैं, उनमें मन्दता आती है। क्योंकि पाचन संस्थान द्वारा अतिरिक्त विद्युत ऊर्जा का उपयोग किए जाने पर मस्तिष्क को मिलने वाली विद्युत ऊर्जा की मात्रा कम हो जाती है। परिणामतः उदरस्थ पाचन की क्रिया प्रधान और मस्तिष्क की क्रिया गौण हो जाती है। इसका सीधा प्रभाव वह होता है कि मनुष्य अधिक आहार वाला और कम बुद्धि वाला होता है। शरीर में निर्मित होने वाली उस ऊर्जा का सम्बन्ध शारीरिक श्रम से है। खाए हुए आहार का पाचन करने के लिए जिस ऊर्जा की आवश्यकता होती है वह सामान्यतः सम्पूर्ण शरीर में विद्यमान रहती है। शरीर का कोई भी अंग जब अतिरिक्त श्रम करता है तब उसके ऊर्जा का प्रवाह अधिक हो जाता है। आहार के पाचन के लिए पाचन संस्थान को अतिरिक्त या अधिक श्रम करना पड़ता है तब उसे अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति अन्य संस्थान या अवयव से होती है। अतः किसी एक अवयव को अतिरिक्त ऊर्जा की पूर्ति होने पर जिस अवयव से पूर्ति होती है उस अवयव में ऊर्जा की कमी हो जाती है जिससे निश्चित रूप से उस अवयव की क्रियाएँ प्रभावित होती है, परिणाम स्वरूप उस अवयव की क्रियाओं में मन्दता आ जाती है।

भोजन करने के तत्काल बाद कोई भी बौद्धिक कार्य नहीं करने का निर्देश विद्वानों ने दिया है। इसका कारण सम्भवतः यही है कि पाचन संस्थान में जाने वाली ऊर्जा में अवरोध उत्पन्न नहीं हो और उस अवरोध या ऊर्जा की अल्पता के कारण पाचन में कोई विकृति नहीं हो। सामान्यतः जब सादा और संतुलित भोजन लिया जाता है तब शरीर के सभी अंग प्रत्यंगों को संतुलित ऊर्जा का प्रवाह सतत बना रहता है, क्योंकि पाचन के लिए अपेक्षित ऊर्जा वहाँ स्वतः ही विद्यमान रहती है, उसे अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता नहीं पड़ती। किन्तु जब गुरु (भारी) और असन्तुलित भोजन (बार-बार खाना या अधिक मात्रा में खाना) लिया जाता है तब पाचन संस्थान को अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो वह अन्य अंगों-अवयवों से खींचता है। इसका सीधा प्रतिकूल प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है, क्योंकि आकृष्ट ऊर्जा वहीं से आती है। अतः यह स्वाभाविक है कि जब पाचन संस्थान की ऊर्जा बढ़ेगी तो मस्तिष्क की ऊर्जा क्षीण होगी। ऐसी स्थिति में अधिक या असन्तुलित खाने वाले का मस्तिष्क या बुद्धि उतनी तीव्र या कुशाग्र नहीं होती है। जितनी कम और संतुलित खाने वाले की होती है। अधिक खाने वाले का पेट तो बड़ा होता है, किन्तु मस्तिष्क छोटा होता है। यही कारण है कि न तो उनकी बुद्धि विकसित होती है और न ही प्रतिभा का विकास होता है। अतः यह आवश्यक है कि ऊर्जा का अनावश्यक व्यय या अपव्यय न हो। पाचन के लिए कम से कम व्यय हो, ताकि चिन्तन-मनन आदि मस्तिष्कीय एवं मानसिक गतिविधियों में उसका उपयोग अधिकाधिक हो सके जो मनुष्य के बौद्धिक व मानसिक स्तर तथा प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है।

आहार सात्विक हो

दैनिक रूप से हम जो भी आहार लेते हैं वह तीन प्रकार का होता है–सात्विक, राजसिक और तामसिक। शुद्ध, लघु, सुपाच्य आहार सात्विक आहार होता है। जिस आहार के सेवन से सत्व (मन) बुद्धि और विचार शुद्ध, निर्मल और सरल होते हैं, वह आहार सात्विक होता है। सात्विक आहार के सेवन से हृदय में सरलता और निर्मलता आती है, विचारों में पवित्रता आती है और मानसिक भाव या परिणाम शुद्ध होते हैं। सात्विक आहार के अन्तर्गत सभी प्रकार का अनाज, दलहन, साग-सब्जियाँ, फलियाँ, फल, सूखे मेवे तथा उचित मात्रा में दूध, मक्खन, पनीर आदि आते हैं। ऐसा आहार मानसिक शान्ति और समरसता उत्पन्न करता है, चित्त और मस्तिष्क में विकार उत्पन्न नहीं होने देता तथा मनोभावों को दूषित नहीं होने देता।

अधिक मात्रा में मिर्च-मसाले, अचार, चटनी, खट्टे तीखे, उष्ण, तीक्ष्ण पदार्थों वाले भोजन का सेवन करना राजसिक आहार के अन्तर्गत आता है। राजसिक आहार स्वभाव को उग्र बनाता है। उत्तेजक होने से मन, मस्तिष्क और इन्द्रियों को उत्तेजित करता है। राजसिक आहार सेवन करने वालों का मन अशान्त और असन्तुलित होता है, उन्हें क्रोध जल्दी आता है। मन और मस्तिष्क में चंचलता होने से उनके विचार अस्थिर होते हैं, ऐसे व्यक्ति कोई निर्णय नहीं कर पाते हैं।

बासा खाना, मांस, मछली, अण्डा, मुर्गे का चूजा, स्मैक, हेराइन, गांजा, भांग, धतूरा आदि विभिन्न नशीले द्रव्यों का सेवन एवं मदिरा आदि नशीले पेयों का सेवन तामसिक आहार में परिगणित होता है। तामसिक भोजन मन एवं बुद्धि को मन्द करता है, विचारों को कुण्ठित करता है तथा शारीरिक कार्यक्षमता को मन्द करता है। सतत रूप से तामसिक आहार लेने वाले व्यक्ति हिंसक एवं क्रूर प्रकृति के होते हैं, उनकी विचार शक्ति कुण्ठित हो जाती है, उनके हृदय में स्वाभाविक सहज भाव उत्पन्न नहीं हो पाते। वे सतत दुर्भावना से ग्रस्त रहते हैं और उनके विचारों की पवित्रता नष्ट हो जाती है। ऐसे व्यक्ति बहुत जल्दी कुण्ठाग्रस्त हो जाते हैं।

उपर्युक्त तीन प्रकार के आहार में सात्विक आहार सर्वोत्तम होता है, राजसिक आहार मध्यम और तामसिक आहार अधम होता है। निर्मल बुद्धि एवं सात्विक विचारवान् लोग सर्वथा सात्विक आहार को ही ग्राह्य मानते हैं। वे अपने आचार-विचार एवं व्यवहार को सरल एवं निर्मल बनाने के लिए सात्विक आहार ही ग्रहण करते हैं। आध्यात्मिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए भी सात्विक आहार ही अनुकूल होता है। व्यक्ति चाहे किसी धर्म या सम्प्रदाय से जुड़ा हो, ईश्वराराधन के लिए उसे सात्विक होना आवश्यक है और सात्विक होने के लिए सात्विक आहार का ही ग्रहण करना आवश्यक है। विभिन्न धर्मों का सन्देश भी हमें यही प्रेरणा देता है कि हम सात्विक बनें और सात्विक आहार ही ग्रहण करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहार सेवन के क्रम में शुद्ध एवं सात्विक आहार के सेवन को विशेष महत्व दिया गया है। अतः सामान्यतः हमारा आहार सात्विक होना चाहिए। सात्विक आहार शरीर को तो स्वस्थ रखता ही है वह मस्तिष्क को अविकृत और मन को सन्तुलित रखता है। इस प्रकार सात्विक आहार शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा में तो सहायक है ही, इससे मानसिक भावों और परिणामों में भी विशुद्धता आती है। सबसे बड़ी बात यह है कि सात्विक आहार के मूल में अहिंसा का भाव निहित है जो प्राणिमात्र के प्रति कल्याण के व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है। यह सम्पूर्ण प्राणिजगत् की समानता के आधार का निर्माण करता है। यह अनिवार्यता के सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है जिसके अनुसार हमें वह भोजन लेना चाहिए जो जीवन धारण के लिए अनिवार्य है। जिसकी अनिवार्यता न हो वह नहीं लेना चाहिए। मात्र स्वाद की दृष्टि से जिह्वा की लोलुपता के वशीभूत होकर ऐसा आहार नहीं लेना चाहिए जो दूसरे प्राणियों को मारकर बनाया गया हो।

मनुष्य यदि अपनी इच्छाओं, वासनाओं एवं महत्वाकांक्षाओं के अधीन नहीं होता है तो वह निश्चय ही सुखी रहता है, क्योंकि आत्म सन्तोष के कारण वह कभी विचलित नहीं होता। ऐसा व्यक्ति मनोविकारों से ग्रस्त नहीं होता, क्रोधादि विकार भाव ऐसे व्यक्ति को ग्रसित नहीं कर पाते हैं, राजस और तामस भाव उसे अपने प्रभाव में लेने में समर्थ नहीं पाते और वह इन्द्रिय जनित इच्छाओं और वासनाओं का दास नहीं बन पाता।

दूषित, मलिन एवं तामसिक आहार स्वास्थ्य के लिए अहितकारी और मानसिक विकार उत्पन्न करने वाला होता है। कई बार तो यहाँ तक देखा गया है कि आहार के कारण मनुष्य शारीरिक रूप से स्वस्थ होता हुआ भी मानसिक रूप से अस्वस्थ होता है और जब तक उसके आहार में समुचित परिवर्तन नहीं किया जाता तब तक उसके मानसिक विकार का उपशमन भी नहीं होता।

उपयोगिता शाकाहार की

मनुष्य का स्वाभाविक आहार शाकाहार है। शाकाहार से अभिप्राय उस आहार से है जो हमें विभिन्न वनस्पतियों या वानस्पतिक द्रव्यों के माध्यम से मिलता है। विभिन्न प्रकार का अनाज, दालें, शाक-सब्जी और फल शाकाहार में समाहित है। इसके अतिरिक्त गाय, भैंस, बकरी से प्राप्त होने वाला घी, दूध और उससे निर्मित विविध पदार्थ जैसे दही, छाछ, मक्खन, घी आदि भी इसी के अन्तर्गत आते हैं।

जंगलों की कमी और मनुष्यों की बढ़ती हुई आबादी से अब फलों का उत्पादन कम होता जा रहा है और इनकी खपत बढ़ने से वे मंहगे मिलने लगे हैं। इसलिए दूसरी श्रेणी का आहार जिसके अन्दर विभिन्न प्रकार के शाक आते हैं, शाकाहार के रूप में अपनाया जा सकता है। ऐसे कितने ही सुपाच्य शाक हैं, जिनके फल, फली, कन्द, मूल, पत्ते, गूदा आदि का उपयोग प्राकृतिक स्थिति में या थोड़ा उबालकर आसानी से किया जा सकता है। शाक खरीदने में सस्ते और पकाने में आसान भी पड़ते हैं। उन्हें आंगनबाड़ी के रूप में घरों में भी उगाया जा सकता है। फलों के बाद उन्हीं की संगति शरीर के साथ ठीक बैठती है। सामान्यतः विभिन्न ऋतुओं में होने वाले मौसमी फल भी इतने मंहगे नहीं होते कि उन्हें थोड़ी बहुत मात्रा में लेना कठिन प्रतीत हो। केला, पपीता, आम, अमरूद, बेर, खरबूजा जैसे ऋतुकालीन फल आसानी से मिल जाते हैं और सस्ते भी पड़ते हैं। इन्हें भी अपने दैनिक भोजन का प्रमुख अंग बनाया जा सकता है।

आज आधुनिकता की होड़ में अपनी संस्कृति एवं आचार-विचार सबको दकियानुसी कहने वाले इस झूठी धारणा के शिकार हो रहे हैं कि शाकाहारी भोजन से उचित मात्रा में प्रोटीन अथवा शक्तिवर्धक उचित आहार प्राप्त नहीं होता। वस्तुतः यह मात्र भ्रान्ति है। आधुनिक शोधकर्ताओं व वैज्ञानिक की खोजों से यह स्पष्ट हो गया है कि शाकाहारी भोजन से न केवल उच्चकोटि के प्रोटीन प्राप्त होते हैं, अपितु अन्य आवश्यक पोषक तत्व विटामिन, खनिज, कैलोरी आदि भी अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। सोयाबीन व मूँगफली में मांस व अण्डे से अधिक प्रोटीन होता है। सामान्य दालों में भी प्रोटीन की मात्रा कम नहीं होती। गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का इत्यादि के साथ उचित मात्रा में दालें एवं हरी सब्जियों का सेवन किया जाए तो न केवल प्रोटीन की आवश्यकता पूर्ण होती है, अपितु अधिक संतुलित आहार प्राप्त होता है जो शाकाहारी व्यक्ति को मांसाहारी की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, सबल एवं कार्यक्षम बनाता है तथा उसे दीर्घायु प्रदान करता है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह तथ्य उद्घाटित हुआ है कि मांसाहार हमारे जीवन के लिए कतई अनिवार्य नहीं है। मांसाहार कोलेस्ट्रोल को बढ़ाता है जो हृदय रोग का कारण है। वास्तव में माँस का अपना तो कोई स्वाद होता नहीं है, उसमें मसाले, चिकनाई आदि अन्य अनेक क्षेपक द्रव्य मिलाए जाते हैं उनका ही स्वाद होता है। इसके विपरीत शाकाहारी पदार्थों–फल, सब्जी, मेवे आदि में अपना अलग स्वाद होता है जो बिना किसी मसाले आदि के बड़े स्वाद और चाव से खाए जाते हैं।

शाकाहार के अन्तर्गत दूध, दही, छाछ भी हमारे दैनिक आहार में सम्मिलित रह सकते हैं। मिठास के लिए सफेद चीनी के स्थान पर गुड़, शक्कर, किसमिस, अंजीर, खजूर आदि को प्रयोग में लाया जा सकता है। इससे बहुत कुछ अंशों में लोगों को मधुमेह व्याधि होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। हमारे दैनिक भोजन में अन्न की मात्रा यदि शाक और दूध की तुलना में कम रखी जाती है तो यह हमारे शरीर की दैनिक आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त है, यह हमारे स्वास्थ्य संरक्षण में सहायक होता है। हमारे दैनिक आहार में यदि एक तिहाई या चौथाई अन्न रहता है तो ठीक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, इससे अधिक अनाज का भार उदर की पाचन शक्ति पर नहीं डाला जाना चाहिए।

यह एक तथ्य परक स्थिति है कि अनाज हो या शाक-फल आदि हों, उनके छिलकों में अपेक्षाकृत अधिक पोषक तत्व रहते हैं। अतः विभिन्न अनाज, दालों और फलों का उपयोग यदि छिलका सहित किया जाता है तो वह अधिक लाभदायक और स्वास्थ्यवर्धक होता है। गेहूँ, चना आदि को अंकुरित कर लिया जाए और प्रातः उन भीगे व फूले हुए चनों को खाया जाय तो उससे न केवल शरीर की आहार सम्बन्धी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति होती है, अपितु वह गुणकारी एवं पौष्टिक भी होता है। अन्न द्रव्य को भिगोकर उसे भीगे तौलिया में बांधकर हवा में लटका दिया जाय तो वह अन्न द्रव्य स्वयं की अंकुरित हो जाता है। उसे कुचलकर या ऐसे ही खाया जा सकता है। थोड़ा सा उबाल लेने पर सुखादु खाने लायक एवं रुचिकर तो बन जाता है, उसकी पोषक शक्ति में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हो जाती है। पेट खाली हो जाने पर और तेज भूख लगने पर यदि देर तक चना चबाकर खाया जाय तो साधारण आहार भी विशेष गुणकारी हो जाता है।

यह तथ्य परक वस्तु स्थिति है कि गेहूँ आदि अनाज का पिसा हुआ आटा छानकर प्रयोग करने से उसके पुष्टिकारक और बलवर्धक तत्व चोकर में निकल जाते हैं और आटा सार हीन बन जाता है। अतः सदैव चोकर युक्त आटे का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार मूँग और उड़द की दालें छिलका सहित ही सेवन करना चाहिए। सेव जैसे फलों का छिलका उतार कर खाना बुद्धिमानी नहीं है। अपने आपको सुसंस्कृत समझने वाले भले ही इसे आज सभ्यता का तकाजा मानकर सेब का छिलका उतारकर खाएँ, किन्तु यह स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी और लाभदायक नहीं होता है। जलपान में दूध-छाछ जैसे द्रव प्रधान आहार लेना पर्याप्त एवं उपयोगी होता है, प्रातःकालीन नाश्ता में यथा सम्भव ठोस आहार का परिहार करना चाहिए।

भोजन के सम्बन्ध में निम्न बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है :-

१. सामान्यतः भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिए, बिना भूख के जबरदस्ती भोजन करना शरीर की पाचन क्रिया और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

२. भरपेट या ठूँस-ठूँस कर भोजन करना शरीर की पाचन क्रिया और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अतः ठूँस-ठूँस कर भोजन नहीं करना चाहिए।

३. भोजन करते समय किसी चिन्ता से ग्रस्त या तनावपूर्ण स्थिति में नहीं होना चाहिए।

४. खाद्य पदार्थों को अच्छी तरह चबा-चबाकर खाना चाहिए। खाना खाने में जल्द बाजी नहीं करना चाहिए।

५. भोजन के दौरान बीच में थोड़ा-थोड़ा जल लेना चाहिए। भोजन के बाद बहुत अधिक जल नहीं पीना चाहिए।

६. सामान्यतः दिन में दो बार भोजन करना चाहिए और दोनों भोजनों के मध्य लगभग छह से आठ घंटे का अन्तराल (अन्तर) होना चाहिए। इससे भोजन के पचने में सुविधा रहती है और भोजन का परिपाक ठीक होता है।

७. दिन भर मुँह चलाते रहने की आदत ठीक नहीं है। बार-बार कुछ न कुछ खाते-पीते रहना पाचन सिद्धान्त के विरुद्ध और हानिकारक है। इससे पाचन शक्ति प्रभावित होती है और वह बिगड़ जाती है जिससे भोजन के परिपाक में बाधा आती है और आहार का परिपाक जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हो पाता है। अतः बार-बार खाने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए।

८. भोजन करने के बाद लगभग १०० कदम चलना चाहिए।

९. ग्रीष्म आदि ऋतु में भोजन के बाद यदि लेटने की आदत है तो बाँई करवट से लेटना चाहिए।

१०. भोजन में सामान्यतः चोकर युक्त युक्त आटा, जौ, चावल, दालें, चना, घी, तक्र, सोयाबीन, ताजी हरी तरकारियों आदि का सेवन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार नीबू, अदरक, आंवला आदि का प्रयोग भी करना चाहिए।

११. भोजन के अन्त में ऋतुओं के अनुसार उपलब्ध फल जैसे केला, अमरूद, अनार, संतरा, नाशपाती, सेब आदि का सेवन करना चाहिए।

१२. सबसे अंत में तक्रपान करना अत्यन्त लाभदायक है।

१३. प्रतिदिन दही सेवन नहीं करना चाहिए। रात्रि में दही का प्रयोग हानिकारक होता है। अतः बिल्कुल नहीं करना चाहिए।

१४. पानी का सेवन भी हमारे शरीर के लिए उपयोगी एवं आवश्यक आहार के रूप में माना जाता है। भोजन के दौरान थोड़ा पानी पीना उपयोगी होता है। भोजन करने के एक घंटे बाद से लेकर दूसरा भोजन लेने तक पाँच-छह ग्लास पानी पीते रहने से पेट और रक्त की सफाई होती रहती है।

आहार सेवन क्रम में वास्तव में यदि रखा जाय तो मनुष्य की एक सीमा मर्यादा होती है जो उसकी प्रकृति या स्वभाव के अनुकूल रहती है। यदि इसका व्यतिक्रम नहीं किया जाय तो मनुष्य की उदर सम्बन्धी स्वाभाविक स्थिति सामान्य बनी रह सकती है और उसके उदरगत पाचन तन्त्र की कार्यक्षमता में कोई गतिरोध उत्पन्न होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। उदरगत आंत्र, अमाशय, यकृत, प्लीहा आदि अवयवों से स्रवित होने वाले विभिन्न स्राव (पाचक रस) वनस्पतियों तथा वनस्पतिक द्रव्यों से बने आहार को सम्यक्तया पाचित कर उसे रस-रक्त मांस आदि धातुओं में परिवर्तित कर शरीर को पुष्ट करने का कार्य करते हैं। प्रत्येक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य के उदर में खाए हुए आहार के पाचन की सीमित क्षमता होती है। अतः अधिक मात्रा में खाने, खाद्य पदार्थों को अधिक भूनने, तलने या मसाले की भरमार करने से पाचन शक्ति पर अनावश्यक दबाव पड़ता है। जिससे उस खाए हुए आहार का पाचन ठीक से नहीं हो पाता। इसी प्रकार स्वाभाविक रूप से गुरु (गरिष्ठ) मांस-मछली आदि पदार्थों को भी पचाने में उदर को कठिनाई होती है। इसलिए आहार के चयन पर समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है। जो अभक्ष्य है उसे तो खाया ही नहीं जाय और जो भक्ष्य है उसे अभक्ष्य बनाकर नहीं खाया जाए।

जीवन विकास का सोपान

शाकाहार मात्र अपने आहार में शाक-सब्जियों के समावेश तक सीमित नहीं है, वह आचार की मर्यादा, मानसिक भावों में अहिंसा की व्यापकता, प्राणियों के प्रति करुणा एवं समानता की भावना तथा जीवन के प्रति आस्था का अनुष्ठान है। यह जीवन में अहिंसा के आचरण के उस चरण का प्रतिपादक है जिसमें प्राणि मात्र के प्रति समता एवं ममता के भाव को तो मुखरित करता ही है, प्राणि मात्र से मनुष्य के मैत्री भाव को प्रोत्साहित करता है। शाकाहार के प्रयोग से मनुष्य का मानसिक धरातल इतना उन्नत हो जाता है कि उसमें स्व-पर का भेद-भाव मिट जाता है और वह उस सीमा रेखा को पार कर परहित चिन्तन में ही लगा रहता है। "जीवो जीवस्य भोजनम्"–'जीव के लिए जीव का जीवन' उस मिथ्या और भ्रम मूलक धारणा का पोषक है जिसमें जीवन के अस्तित्व की अवधारणा ही सदा के लिए तिरोहित हो जाती है। अतः जीव जीव का भोजन नहीं है, तब जीव मनुष्य का भोजन कैसे हो सकता है? जीव उसका सहयोगी है जो सम्पूर्ण प्राणि जगत् में प्रकृति की व्यवस्था के अनुरूप रहने और जीने का अधिकार रखता है। किसी भी प्राणि के जीने के अधिकार को छीनना मानवीय मूल्यों और सिद्धान्तों के विरुद्ध है। मनुष्य के भोजन के लिए दूसरे निरीह प्राणियों का वध और घात करना मानवीयता के उच्चादर्शों का हनन और मनुष्य के पाशविक होने को सिद्ध करता है।

यद्यपि सिंह आदि कुछ हिंसक प्राणियों में अन्य प्राणियों को मारकर खाने की वृत्ति पाई जाती है। बड़ी मछलियाँ भी छोटी मछलियों को निगल जाती हैं। जलचर मगर भी मांस भक्षी होता है। इसीलिए "जीवो जीवस्य भोजनम्" जैसे विकृत उक्तियों का कथन किया गया जो विकृत मानसिकता की परिचायक है। सम्पूर्ण प्राणि जगत् की संरचना पर गौर किया जाए तो हम पाते हैं कि सभी प्राणियों में देह या शरीर ही प्रधान है, आहार, निद्रा, भय और मैथुन ही उसकी वृत्ति है जो मनुष्य और अन्य प्राणियों में समान है। जिजीविषा सभी प्राणियों में समान रूप से पाई जाती है, कामैषणा प्राणियों की स्वाभाविक वृत्ति की परिचायक है।

पशु जीवन मात्र चतुर्विध प्रवृत्ति–आहार, निद्रा, भय और मैथुन के लिए होता है। पशु के पास बुद्धि और विवेक नहीं होता है। शील, संयम, विनय आदि आचरण शील भावों के लिए मनःस्थिति का विकास नहीं होता है। उसके लिए उसका शरीर ही प्रधान होता है। इससे भिन्न मनुष्य के पास शरीर से परे उन्नत मानसिकता एवं मानसिक चेतना होती है जो उन्नत, शुद्ध एवं सात्विक भावों को उत्पन्न करती है। इसी चेतना के संस्कार प्राण शक्ति को विकसित एवं सन्तुलित रखते हैं। इसी से संकल्प शक्ति का भी विकास होता है जो चित्त शुद्धि के साथ-साथ आहार शुद्धि की भावना को विकसित करती है।

यही कारण है कि मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें हिताहित विवेक अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक होता है। उसमें कुछ भी करने से पूर्व समीक्षा करने की चेतना है, वह अपने संस्कारों का निर्माण स्वयं करता है और अपनी अन्तरात्मा की ऊँचाइयों को छूने की क्षमता रखता है। वह संकल्प कर सकता है और शाश्वत जीवन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए अपने लक्ष्य निर्धारित कर सकता है। यही उसकी मौलिक विशेषता है जो उसे संसार के सभी प्राणियों में गरिमा प्रदान करती है।

जीवन की सार्थकता के लिए संयम पूर्ण जीवन यापन मनुष्य का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। इसके लिए चित्त की शुद्धि और तदर्थ समुचित उपाय अपेक्षित है। शाकाहार चित्त की शुद्धि करता है, वह निर्मल परिणामों-भावों को उत्पन्न करता है। इससे संयम की प्रेरणा मिलती है और उस ओर प्रवृत्ति होती है, अतः असंदिग्ध रूप से शाकाहार संयम की भूमिका है। इस सन्दर्भ में उपनिषद् का वाक्य–"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः" महत्वपूर्ण है। आहार शुद्ध होता है तो चित्त शुद्ध होता ही है। जब चित्त शुद्ध होता है तो विवेक जाग्रत रहता है, भाव शुद्ध रहते हैं और स्वतः ही संयम की भावना प्रबल होती है। आहारगत संयम को स्वतः बल मिलता है। यही जीवन की वास्तविकता है जो मनुष्य को प्रकृति के समीप ले जाता है और प्रकृति की व्यवस्था में उसे ढालता है। वस्तुतः यदि देखा जाय तो प्रकृति स्वयं एक व्यवस्था है, सन्तुलन है और सात्विक जीवन का अनवरत प्रवाह है।

आचरण की शुद्धता मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक है जिसमें आहारगत संयम, आहार की मर्यादा और पवित्रता का स्वतः समावेश है। इसके अन्तर्गत चाहे जो मत खाओ, चाहे जिस समय और चाहे जिसके साथ मत खाओ का निर्देश अंधा आग्रह नहीं है। यह प्रकृति का विधान है जो आहारगत संयम का निर्देश करता है। सात्विक आहार की अवधारणा भी इसी पर आधारित है, क्योंकि वह मनुष्य के अन्तर्जगत् में अवस्थित प्राण, चेतना, मन, बुद्धि और इन्द्रियों को प्रदूषण से मुक्त तो रखता ही है मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास के पर्याप्त अवसर भी प्रदान करता है। शाकाहार असत् से सत्, पशुता से मनुष्यता की विकास यात्रा है जो सतत अंधकार से प्रकाश की ओर उन्मुख करती हुई हिंसा से विरति और अहिंसा से रति उत्पन्न

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

करती है। आहार में शुद्धता और सन्तुलन तथा शरीर और मन की शोधन प्रक्रिया सन्निहित है जो शरीर और मन के दोषों को दूर कर शरीर और मन का संशोधन करती है। इस प्रकार के शोधन से जिन दोषों का निराकरण होता है उससे चेतना केन्द्र भी निर्मल बन जाते हैं। आहार ही क्रियमाण शरीर की संरचना में मुख्य भूमिका का निर्वाह करता है। मनुष्य के स्थूल शरीर से आगे सूक्ष्म शरीर भी होता है जो तेजोमय होता है। चित्त की शुद्धि से तेजस् शरीर का निर्माण होता है जो मनुष्य के आध्यात्मिक शक्ति के विकास में सहायक होता है।

यह देखा गया है कि मात्र शाक-सब्जी खाने से शाकाहार की मूल भावना विकसित नहीं होती है। यह तब तक सम्भव नहीं है जब तक शाकाहारी मनुष्य भावनात्मक रूप से इस प्रक्रिया से नहीं जुड़ जाता है। संसार में अनेक लोग हैं जो मांस जैसे खाद्य पदार्थों को छूते भी नहीं हैं, केवल शाकाहार ही उनका दैनिक आहार है। किन्तु मात्र शाकाहारी होने से वे सात्विक या अहिंसक वृत्ति वाले नहीं बन जाते। उनके अन्तःकरण में जब तक शाकाहार की मूल भावना अहिंसा भाव और सात्विकता का विकास नहीं होता है तब तक शाकाहार की सार्थकता नहीं है। संसार में अधिसंख्य प्राणि ऐसे हैं जिनका जीवन केवल शाकाहार पर निर्भर है। अतः औपचारिक रूप से वे शाकाहारी हैं। मनुष्य भी शाकाहारी होते हुए भी अपने भावों और क्रिया में पूर्ण सात्विक नहीं हो पा रहा है। उनके दैनिक आहार क्रम में मांसाहार वर्जित है, किन्तु क्या उनके जीवन में हिंसा भाव की वर्जना हो पाई है। वह अपने आचार, विचार और दैनिक व्यवहार में क्या उन द्रव्यों की वर्जना कर पाया है जिनके मूल में हिंसा की प्रवृत्ति छिपी है। आज ऐसे अनेक प्रसाधन व्यवहार में प्रचिलत हैं जिनका निर्माण हिंसा का सहारा लिए बिना सम्भव नहीं है, उनका प्रयोग वही शाकाहारी मनुष्य धड़ल्ले से कर रहा है। ऐसी अनेक आधुनिक औषधियाँ हैं जिनका आविष्कार एवं निर्माण निरीह पशुओं की प्राणाहुति पर आधारित है। उन औषधियों का नियमित सेवन आज मनुष्य की नियति बन गई है। अतः उन शाकाहारियों में न तो हिंसा भाव की वर्जना हो पाई और न ही सात्विकता का भाव विकसित हो पाया। इससे शाकाहार की मूल भावना स्वतः बाधित हो गई और रह गई केवल औपचारिकता।

आज भौतिकवाद अपने चरमोत्कर्ष पर है, क्योंकि विज्ञान के साथ उसकी संगति है। वैज्ञानिक धरातल पर हुए आविष्कार और विज्ञान ने मनुष्य को सुख-सुविधा के अनेक साधन उपलब्ध कराए हैं उनसे मनुष्य को शारीरिक या भौतिक सुख तो अवश्य उपलब्ध हुआ है, किन्तु मानसिक शान्ति और आनन्दानुभूति से वह कोसों दूर रहा। वस्तुतः विज्ञान से जीवदया, प्रेम आनन्द का कोई रिश्ता नहीं। आज विज्ञान का आधार केवल बुद्धि कौशल, भौतिकवादी प्रवृत्ति और प्रकृति का दोहन कर अपनी सत्ता का विस्तार करना है। इससे प्रकृति में असन्तुलन स्वाभाविक है। प्रकृति के प्रवाह में हस्तक्षेप या बाधा उत्पन्न करना प्रकृति के सन्तुलन को बिगाड़ना है जो जीवन की गति को विखण्डित करता है। आज मनुष्य विज्ञान और भौतिकवाद के प्रवाह में बह कर प्रकृति से दूर होता जा रहा है। उसका आकाश के नीचे खुली हवा में रहना, जीवों से तादात्म्य स्थापित करना, प्राकृतिक संरचनाओं से प्रेम करना स्थगित हो गया है। इससे मनुष्य में उसके स्वाभाविक गुणों का विकास अवरुद्ध हो गया है और उसमें पशुता हावी होती जा रही है। इसे भले ही वैज्ञानिक विकास की संज्ञा दी जाय, किन्तु वास्तव में यह मानव विकास की गति में अवरोध है।

वर्तमान भोगवादी संस्कृति एवं विकसित भौतिकवाद आधुनिक वैज्ञानिक विकास की देन है जो पाश्चात्य संस्कृति पर आधारित है। इसमें आध्यात्मिक विकास या आत्मोन्नति की बात करना मूर्खता या पोंगा पंथी माना जाता है। फिर भी मनुष्य उस लक्ष्य या ध्येय को अंश मात्र भी प्राप्त नहीं कर पाया है जो जीवन विकास के लिए आवश्यक है तथा मानवीय उच्चादर्शों का प्रतीक है। यदि ऐसा हो पाता तो निश्चय ही वैज्ञानिक विकास की सार्थकता हो जाती। वर्तमान में हमारे जीवन में जो सांस्कृतिक विकृति आई है उसने हमारे आचार, विचार और आहार को भी अपने दायरे में समेट लिया है। अतः इससे हमारा आचार, विचार और आहार विकृत होना स्वाभाविक है। इसके दुष्परिणाम भी हमारे सम्मुख आने लगे हैं। प्रकृति में निरन्तर असन्तुलन बढ़ता जा रहा है, पर्यावरण का निरन्तर विनाश हो रहा है तथा प्रकृति एवं अन्य संसाधनों में तीव्र गति से प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। इस प्रदूषण ने मनुष्य के जीवन में भी जबर्दस्त घुसपैठ की है जिससे जीवन में अहिंसा का स्थान हिंसा ने ले लिया है। समाज में हिंसा, नफरत, अराजकता तथा द्वेषभाव तेजी से पनप रहा है। आपसी सौहार्द का स्थान व्यक्तिवाद लेता जा रहा है। जिससे समाज में असन्तुलन बढ़ता जा रहा है।

शाकाहार अहिंसा भावना की ही अभिव्यक्ति है जो प्राणि जगत् में एक-दूसरे के प्रति आदर और निष्ठा के भाव को बढ़ाती है। निरामिष आहार सेवन करने में मनुष्य का नैसर्गिक जीवन से स्वतः सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। शाकाहार मनुष्य को प्रकृति से जोड़ता है, अतः प्रकृति की रक्षा इससे स्वतः हो जाती है जिसका सीधा प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है। अतः निरामिष आहार या शाकाहार में केवल आहार या क्या खाना और क्या नहीं खाना ही महत्वपूर्ण नहीं है, महत्व है मानसिक सात्विकता एवं मानसिक चेतना के उत्थान का। भक्ष्याभक्ष्य का विचार तो व्यक्तिगत रुचि पर भी आधारित होता है, किन्तु जब भावना, सात्विकता, मानसिक भावों आदि का सम्बन्ध उससे होता है तो मनुष्य सामान्य धरातल से उठकर उच्चता के आदर्श तक पहुँच जाता है। जिससे मनुष्य में स्वतः ही हिताहित विवेक जाग्रत हो जाता है। अतः यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि मनुष्य के जीवन निर्माण एवं जीवन विकास में आहार विशेषतः निरामिष या शाकाहार का महत्वपूर्ण स्थान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुपयोगी और हानिकारक है मांसाहार

आजकल मांसाहार का प्रचलन बहुत अधिक बढ़ गया है। किन्तु वैज्ञानिक खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य के सामान्य जीवनयापन के लिए मांसाहार कतई उपयोगी या आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त मांस, मछली, अण्डा आदि को धार्मिक दृष्टि से भी अभक्ष्य माना गया है। वे केवल धार्मिक दृष्टि से ही अभक्ष्य पदार्थ नहीं हैं, अपितु स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वे उपयोगी, आवश्यक या हितकारी नहीं हैं। पहले इन अखाद्य पदार्थों में विटामिन और प्रोटीन की अधिक मात्रा पाई जाने के कारण मनुष्य के लिए उपयोगी माना गया था, किन्तु जैसे-जैसे चिकित्सा विज्ञानीय गहरी खोजें होती गई वैसे-वैसे इन पदार्थों की खाद्य पदार्थ के रूप में अनुपयोगिता सिद्ध होती गई।

मांसाहार के समर्थन में एक यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि मांस और अण्डे में प्रोटीन की बहुत अधिक मात्रा होती है। किन्तु वैज्ञानिक खोजों ने यह तथ्य उजागर किया है कि अधिक मात्रा में सेवन किया गया प्रोटीन लाभदायक नहीं होता है। प्रोटीन की अधिक मात्रा सेवन करने से मनुष्य के शरीर में तत्वों का जो असंतुलन उत्पन्न हो जाता है उससे मनुष्य शीघ्र ही अस्वस्थ या बीमार हो जाता है। कभी-कभी उससे उसका मानसिक सन्तुलन भी बिगड़ जाता है और वह मानसिक विकृति से आक्रान्त हो जाता है। अतः अधिक मात्रा में प्रयुक्त प्रोटीन लाभदायक नहीं होता है। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक दिन में १०-१५ ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है, किन्तु मांसाहार करने वाले या नियमित रूप से अण्डा खाने वालों के शरीर में प्रोटीन की अधिक मात्रा पहुंच जाती है जो बिल्कुल भी लाभप्रद नहीं होती है।

जो लोग प्रोटीन के आधार पर मांसाहार का समर्थन करते हैं उनके अनुसार शाकाहार में इतना प्रोटीन नहीं मिलता है कि शरीर की आवश्यकता की पूर्ति हो सके, अतः शरीर के लिए अपेक्षित प्रोटीन की आपूर्ति मांसाहार के द्वारा करना चाहिए। किन्तु वे भूल जाते हैं कि शरीर के लिए उतना प्रोटीन आवश्यक ही नहीं होता है जितना वे मांसाहार के द्वारा प्राप्त करते हैं। अतः अधिक मात्रा में शरीर में पहुँचा हुआ प्रोटीन शरीर के लिए हानिकारक होता है। प्रोटीनों में भी प्राणिज प्रोटीन अपेक्षाकृत अधिक हानिकारक होता है। वानस्पतिक प्रोटीन ही शरीर के लिए अधिक उपयोगी होता है, वह भी उचित मात्रा में। इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बाजरा से जो प्रोटीन प्राप्त होता है वह अत्यन्त उच्चकोटि का होता है और उसके समक्ष मांस से प्राप्त होने वाला प्रोटीन नगण्य है। अतः बाजरा में विद्यमान प्रोटीन असंदिग्ध रूप से स्वास्थ्य के लिए उपयोगी और लाभदायक होता है। जबकि मांस और अण्डा में विद्यमान प्रोटीन रोगोत्पादक होता है।

शरीर के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता होती है उनमें सामान्यतः प्रोटीन कार्बोहाइट्रेट, स्नेह (वसा), लवण, क्षार, लौह और जीवनीय तत्व (विटामिन्स) मुख्य हैं। शरीर के पोषण, संवर्धन और संरक्षण के लिए हमारे दैनिक आहार में आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में इनका समावेश होना सन्तुलित भोजन माना जाता है। किन्तु कुछ अति उत्साही लोगों ने प्रोटीन को इतना अधिक महत्व दे दिया है कि अधिक प्रोटीन की लालसा ने लोगों को मांसाहार की ओर प्रेरित कर दिया। सम्भवंतः अधिक प्रोटीन एवं मांसाहार ने ही लोगों में बीमारियाँ उत्पन्न होने का अवसर दिया। लोगों में घुटने का दर्द होने का एक कारण शरीर में प्रोटीन की अधिक मात्रा होना है। विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों को भी प्रारम्भ से यही सिखाया जाता है कि प्रोटीन शरीर के लिए आवश्यक और महत्वपूर्ण तत्व है और यह अण्डा में अधिक मात्रा में पाया जाता है। किन्तु उन्हें यह जानकारी नहीं दी जाती कि शरीर के लिए कितना प्रोटीन आवश्यक होता है और कितना आसानी से सुपाच्य होता है?

आज आहार के विषय में नवीनतम खोजें सामने आ रही हैं जिनसे पता चलता है कि आहार के सम्बन्ध में लोगों में कितनी भ्रांतियाँ थी। अब वे भ्रांतियाँ टूटती जा रही हैं। अब माना जाने लगा है कि अधिक प्रोटीन खाना कतई उपयोगी नहीं है, अपितु वह हानिकारक होता है। अतः अण्डा खाना और मांस का सेवन करना रोगों को आमंत्रण देना है।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में पोषण विभाग के प्रोफेसर डॉ. महेश चन्द्र गुप्ता ने शाकाहारी आहार को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मांसाहारी आहार की तुलना में श्रेष्ठ बताते हुए कहा है कि शाकाहारी भोजनों में अनेक ऐसे पदार्थ पाए जाते हैं जो कैंसर जैसी घातक बीमारियों से भी बचाव कर सकते हैं। उन्होंने बताया कि यद्यपि प्रोटीन की मात्रा दोनों प्रकार के भोजनों में पर्याप्त होती है, किन्तु विटामिन सी और ए मुख्यतः शाकाहारी भोजन में ही पर्याप्त रूप से उपलब्ध होता है। इसके विपरीत जिस मांसाहारी खाद्य में विटामिन ए अधिक होता है, वह है अण्डा जिसमें कोलेस्ट्रोल की भी मात्रा अधिक होता है। कोलस्ट्रोल केवल सामिष खाद्यों में ही होता है। निरामिष भोजन में नहीं। एक अण्डे में लगभग २५० मि.ग्रा. कोलेस्ट्रोल होता है। असान्द्रित वसा (अनसेचुरेटेड फैट्स) प्रायः निरामिष भोजन में ही पाई जाती है। इसके अतिरिक्त अनेक डाक्टरों की राय है कि मांस का सेवन करने वाला और नियमित रूप से अण्डा खाने वाला व्यक्ति जितने भयंकर रोगों से पीड़ित या ग्रस्त होता है उतना शाकाहारी कभी नहीं होता। इसके अतिरिक्त सामिष भोजनों से अनेक संक्रामक रोग होने की सम्भावना रहती है। उदाहरण के लिए स्फीतकृमि, यकृत सम्बन्धी विकार आदि। क्योंकि जिन पशुओं का मांस आहार के लिए लिया जाता है वे पशु जिस किसी भी रोग से पीड़ित हों वह रोग उस पशु के मांस को खाने वाले में संक्रमित होने की प्रबल सम्भावना रहती है। विशेषज्ञों के अनुसार शायद ही कोई ऐसा लाभ है जो सामिष खाद्य से प्राप्त होता है। इसके विपरीत सामिष भोजन निरामिष भोजन की तुलना में अधिक मंहगे भी होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकांशतः देखा गया है कि मांसाहारी व्यक्ति के लिए अल्कोहल जैसी मादक वस्तुओं का सेवन अनिवार्य होता है। क्योंकि जो मांस खाया जाता है उसे पचाने के लिए या तो अधिक मात्रा में नमक का सेवन किया जाय या फिर अल्कोहल का सेवन किया जाए। अल्कोहल का सेवन यद्यपि मांस पचाने में सहायक होता है, किन्तु दूसरी ओर वृक्कों (गुर्दे) की क्रिया को प्रभावित कर उनमें विकृति उत्पन्न करता है। अल्कोहल के रूप में प्रयुक्त मदिरा का सीधा प्रभाव यकृत फुफ्फुसों पर पड़ता है। परिणामतः उनमें विकृति उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है। साथ ही रक्तचाप बढ़ जाता है जो अन्ततः हृदय और उसकी क्रियाओं को प्रभावित किए बिना नहीं रहता।

मांसाहार का समर्थन करने वाले कुछ आहार शास्त्रियों का यह मानना है कि मांस का सूप मनुष्य के लिए शक्ति का स्रोत होता है। किन्तु दूसरी ओर वे इस तथ्य को नजर अन्दाज कर जाते हैं कि इसमें विषैले तत्वों की भी भरमार होती है जो मनुष्यों के शरीर में स्वतः निर्मित रोग प्रतिरोध क्षमता (इम्युनिटी) को कम करती है। यह पाया गया है कि शारीरिक सहन शक्ति एवं रोगों का प्रतिरोध करने की शक्ति मांसाहारियों की अपेक्षा शाकाहारियों में अधिक होती है। वैसे भी सामान्यतः मांस में ऐसा कोई विशेष तत्व नहीं होता है जो शाकाहार में नहीं पाया जाता हो। कुछ परीक्षणों से यह भी पुष्टि हुई है कि लगातार मांस का सेवन करने वाले व्यक्तियों के पेट में अपचित मांस के रह जाने से पेट में सड़न पैदा होती है जो अनेक उदर विकारों एवं रोगों को जन्म देती है।

इस सम्बन्ध में डॉ. जे. एच. कैलाग द्वारा मांसाहार के विषय में की गई खोज और उसके परिणाम स्वरूप निकाला गया निष्कर्ष महत्वपूर्ण है कि मांस के प्रति मनुष्य की रुचि अति सामान्य (नार्मल) होती है और मांस खाने से उच्च रक्तचाप, वृक्क सम्बन्धी रोग, आन्त्रपुच्छ शोध (अपेन्डिसाइटित), कैंसर, पेट के जख्म, आंत्रशोध, पित्ताशय की पथरी, कुष्ठ रोग आदि उत्पन्न होने की प्रबल सम्भावना रहती है।

विभिन्न वैज्ञानिक खोजों ने तथा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि मांसाहारी मनुष्य की अपेक्षा शाकाहारी मनुष्य हृदय विकृति, गुर्दे की बीमारी, विभिन्न चर्मरोगों, दांतों की बीमारियों तथा अन्य अनेक रोगों विशेषतः उदर रोगों से बचे रहते हैं।

नोबेल पुरस्कार प्राप्तकर्ता डॉ. माइफल ब्राउन ने मांसाहार के सभी वर्गों का विश्लेषण किया है। उनका कथन है कि अण्डा कोलेस्ट्रोल रसायन उत्पन्न करता है जिससे रक्तचाप और हृदय रोग उत्पन्न होने की संभावना बढ़ती है और कई प्रकार के रक्त विकार उठ खड़े होते हैं। मांस के बारे में उनका कथन है कि इसे खाने वाले अपने पेट की स्वस्थता गंवा बैठते हैं और मानसिक संतुलन की दृष्टि से भी घाटे में रहते हैं। मछली की संरचना भी तालमेल नहीं खाली। उसके द्वारा जो कुछ शरीर को मिलता है उसमें विजातीय तत्वों का बाहुल्य रहता है, जिसके कारण रोग निरोधक क्षमता में कमी हो जाती है। यह पाया गया है कि जो लोग विभिन्न रोगों से ग्रसित होते हैं उनमें शाकाहारियों की अपेक्षा मांसाहारियों की संख्या अधिक होती है।

वैसे १९वीं सदी के अन्त तक स्वास्थ्य शास्त्रियों की यह धारणा जबर्दस्त रूप से रही है कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए मांस का सेवन अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से मांसाहार को प्रोत्साहन मिला। इस धारणा के विरुद्ध बींसवीं शताब्दी में इटली के आहार विशेषज्ञों ने मनुष्य के आहार से मांस का बहिष्कार करने की सलाह दी। इसी सन्दर्भ में जोहंस हापकिंग्स इंस्टीट्यूट के प्रो. ई. वी. मैक्कालम ने कहा कि यदि मांसाहारी मांस खाना छोड़ दें तो कुछ समय में उनका स्वास्थ्य अधिक अच्छा हो जायगा। इसी प्रकार पश्चिम जर्मनी के हैजेजवर्ग स्थित कैंसर अनुसंधान केन्द्र में किए गए अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर बतलाया गया है कि शाकाहारी व्यक्तियों की तुलना में मांस का भोजन करने वाले व्यक्तियों को दिल के दौरे तथा रक्त परिभ्रमण सम्बन्धी घातक रोग अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। संस्थान ने अपने अध्ययन में यह भी पाया है कि शाक-सब्जी खाने वाले रोगों को कैंसर होने का खतरा कम होता है।

उक्त संस्थान में लगातार पाँच वर्ष तक लगभग दो हजार शाकाहारियों पर परीक्षण किए गए। शोधकर्ताओं ने पाया कि एक तिहाई भाग की मृत्युदर में कमी हुई। जो शाकाहारी व्यक्ति अपने दैनिक भोजन में नियमित रूप से दूध, मक्खन और पनीर आदि साथ लेते हैं तो उन्हें अन्य पदार्थों की आवश्यकता नहीं रहती है। उनका भोजन पूर्ण होता है और उन्हें कुपोषण की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है। इस प्रकार परीक्षणों, शोधों एवं तथ्यों से स्पष्ट है कि मांस की अपेक्षा शाकाहारी भोजन अधिक अच्छा, पौष्टिक, विटामिनों से भरपूर तथा हानिरहित है।

आहार सेवन क्रम में विशेषज्ञों ने लोगों को पोषण सम्बन्धी कुछ परामर्श भी दिए हैं। उन्होंने लोगों से आग्रह किया है कि यथासंभव खाद्य पदार्थों को प्राकृतिक रूप में ही प्रयोग करें। घर फैक्टरी आदि में भोजन को विभिन्न साधनों से प्रोसेस करने का अर्थ है भोजन की पोषण शक्ति घटाना तथा भोजन में हानिकारक पदार्थों का समावेश करना। उनके अनुसार भोजन में सामान्य और आसानी से उपलब्धता वाले खाद्य पदार्थों का ही प्रयोग करना चाहिए। मंहगे आहार या भोजन से अधिक पोषण की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए।

स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार भोजन का पर्याप्त प्रभाव मनुष्य के मनोभावों और मानसिक क्रियाओं पर भी पड़ता है। इस बात के प्रमाण पाए गए हैं कि निरामिष भोजन करने वाले व्यक्ति अपेक्षाकृत शांत, सरल और मधुर स्वभाव के होते हैं, जबकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामिष भोजन करने वाले व्यक्तियों में हिंसा और क्रूरता की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। गत दिनों ग्वालियर जेल में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार जब कैदियों को सामिष भोजन के स्थान पर निरामिष भोजन दिया गया तो उनके व्यवहार में इस प्रकार का स्पष्ट परिवर्तन पाया गया।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि मनुष्यों और जानवरों के मस्तिष्क में हिंसा की प्रवृत्ति उनके भोजन विशेष के कारण होती है। सतत रूप से मांस भक्षण एवं मदिरा का सेवन करने वाले मनुष्य का मस्तिष्क हिंसक प्रवृत्ति वाला हो जाता है। इसके विपरीत शाकाहारी मनुष्य स्वभावतः शांत एवं सरल होता है।

मनुष्य प्रकृति से अहिंसक प्राणी होने से शाकाहारी है, तदनुसार ही उसके शरीर और दांतों की रचना आकृति आदि पाई जाती है। मांसाहार के पाचन में सामान्यतः जिन पाचक रसों की आवश्यकता होती है वे हिंसक पशुओं में ही पाए जाते हैं। उनके दांत की बनावट तथा आंतों की लम्बाई भी उसी के अनुसार होती है जिससे वे मांस को चबा और पचा सकें, किन्तु मनुष्य के लिए यह अति कठिन है। खाया हुआ मांस यदि किसी प्रकार पच भी जाय तो उसकी प्रतिक्रिया ऐसी होती है कि जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है और उसकी जीवनी शक्ति प्रभावित होती है। मनुष्य के शरीर में निर्मित और स्रवित होने वाले पाचक रस शाकाहार को पचाने की क्षमता रखते हैं। उन पाचक रसों की प्रकृति ऐसी होती है कि वे शाकाहार को ही ठीक तरह से पचा सकते हैं।

विशेषज्ञों ने लोगों से आहार में सामिष पदार्थों को घटाने एवं हरी पत्तियों वाली सब्जियों का अधिकाधिक प्रयोग करने का आग्रह किया। डाक्टरों ने लोगों से यह भी आग्रह किया कि वे जीने के लिए खाएँ, न कि खाने के लिए जिएँ। मात्र स्वाद की दृष्टि से जिह्वा की लोलुपता की वशीभूत होकर ऐसा आहार नहीं लेना चाहिए जो दूसरे प्राणियों को मारकर बनाया गया हो। वस्तुतः यदि देखा जाए तो मांस का तो अपना कोई स्वाद होता ही नहीं है। उसमें जो मसाले, चिकनाई आदि अन्य अनेक क्षेपक द्रव्य मिलाए जाते हैं उनका ही स्वाद होता है, जबकि शाकाहारी पदार्थों फल, सब्जी, मेवे आदि में अपना अलग स्वाद होता है और वे बिना किसी मसाले आदि के स्वाद से खाए जाते हैं।

अमेरिका और इंगलैंड की सरकारों द्वारा इस समय जनता को औपचारिक रूप से यह हिदायत दी जा रही है कि वे भोजन में मांस की खपत को कम करें, ताकि उनका स्वास्थ्य अच्छा रहे। डॉ. गुप्ता ने कहा कि मैं पूरे वैज्ञानिक आत्मविश्वास के साथ कह सकता हूँ कि इस समय संसार में व्याप्त भुखमरी का एक प्रमुख कारण योजनाबद्ध मांसाहार है। इसके तर्क में उन्होंने कहा कि योजनाबद्ध मांसाहार का तात्पर्य एक ऐसी कृषि खाद्य प्रणाली से है जिसमें खेतों में कुछ अनाजों का उत्पादन सिर्फ इसलिए किया जाता है कि वह अनाज जानवरों को खिलाया जाय, ताकि उनका मॉंस अधिक कोमल और स्वादिष्ट हो।

समय-समय पर आयोजित विभिन्न गोष्ठियों में इस सम्बन्ध में आश्चर्यजनक आंकड़े भी प्रस्तुत किए गए हैं। उन आंकड़ों के अनुसार अमेरिका और कनाडा में उत्पन्न होने वाले गेहूँ का केवल ३०वां भाग ही मनुष्य के आहार के लिए प्रयुक्त होता है। इन देशों में प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति एक हजार किलोग्राम गेहूँ की खपत है जिसमें से मनुष्य केवल ३०-४० किलोग्राम गेहूँ खाते हैं और शेष ६०-७० किलोग्राम गेहूँ गायों, सूअरों आदि को खिलाया जाता है, ताकि वे पुष्ट हो सकें और उनसे अधिक और अच्छा मांस मिल सके। यह एक तथ्य है कि संसार की विशाल जनसंख्या के बावजूद विश्व में इतना अनाज पैदा होता है कि प्रत्येक मनुष्य का पेट भर सके।

पर्यावरण की दृष्टि से भी यदि शाकाहार और मांसाहार की उपयोगिता पर विचार किया जाय तो स्वतः यह तथ्य सामने आता है कि पशुओं का जीवन वनों के संरक्षण और संवर्धन के लिए अनिवार्य है। इसलिए यदि अपनी स्वाद लोलुपता और आहार के लिए पशुओं को मारकर उनका जीवन समाप्त किया जाता है और वनों को पशु विहीन बना दिया जाता है तो इसका सीधा प्रभाव वनों पर पड़ेगा। क्योंकि पशु जीवन समाप्त होने से वनों से पशुओं की संख्या घटेगी जिससे वनों का ह्रास होगा और हम बहुत बड़ी वन सम्पदा और उससे प्राप्त होने वाले लाभों से वंचित हो जायेंगे। क्योंकि वनों के ह्रास का अर्थ है बंजर जमीन में वृद्धि तथा कृषि उत्पादन में कमी होना। सामिष भोजन के अधिक प्रयोग से परोक्ष रूप से कृषि उत्पादन के घटने की संभावना रहती है।

पता :

आचार्य राजकुमार जैन
भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्
ई/६, स्वामी रामतीर्थ नगर
नई दिल्ली ११० ०५५

जीवन में कभी ऐसे भी क्षण आते हैं जब मनुष्य पतित से पावन और दुष्ट से सन्त बन जाता है।
—*उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org